

7-जीवन साधना के स्वर्णिम सूत्र

अध्याय 1: सुधरें-सँभलें तो काम चले

सरल स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: लेखक के अनुसार, प्रकृति का क्रिया-कलाप क्या है?

उत्तर: लेखक के अनुसार, प्रकृति एक बच्चे की तरह पंचतत्त्वों के रेत-बालू को बटोरने, सँजोने, बढ़ाने-घटाने और बिगाड़ने के खेल-खिलवाड़ में लगी रहती है।

2. प्रश्न: मनुष्य को किस दिवास्वप्न की प्रवंचना का पता कब चलता है?

उत्तर: मनुष्य को इस दिवास्वप्न की प्रवंचना का पता तब चलता है, जब उसकी आँख खुलती है, नशे की खुमारी उतरती है और उसे भगवान के दरबार में अपने सौंपे गए कार्यों के बारे में जवाब देना होता है।

3. प्रश्न: मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है?

उत्तर: मनुष्य जीवन का उद्देश्य स्वयं को सुसंस्कृत बनाना और दूसरों को समुन्नत करना है।

4. प्रश्न: "मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है" – इस कथन का क्या अर्थ है?

उत्तर: इस कथन का अर्थ है कि मनुष्य अपनी संकल्प भरी साहसिकता से हर अवरोध को पार कर सकता है। वह अपने लिए गिरने हेतु खाई भी खोद सकता है और उठने के लिए सीढ़ियों वाली मीनार भी चुन सकता है।

5. प्रश्न: ईश्वर किनकी सहायता करते हैं?

उत्तर: ईश्वर केवल उन्हीं की सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं।

6. प्रश्न: वेदान्त विज्ञान के चार महत्वपूर्ण सूत्र कौन से हैं और उनका अर्थ क्या है?

उत्तर: वेदान्त के चार सूत्र हैं—“तत्त्वमसि”, “अयमात्मा ब्रह्म”, “प्रज्ञानं ब्रह्म”, और “सोऽहम्”। इन सभी का अर्थ है कि परिष्कृत जीवात्मा ही परब्रह्म है।

7. प्रश्न: गीताकार के अनुसार, मनुष्य का शत्रु और मित्र कौन है?

उत्तर: गीताकार के अनुसार, मनुष्य स्वयं ही अपना शत्रु है और स्वयं ही अपना मित्र है।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: लेखक ने आम आदमी के जीवन की तुलना सिनेमा के दर्शक से क्यों की है?

उत्तर: लेखक ने यह तुलना इसलिए की है क्योंकि जिस तरह सिनेमा का दर्शक पर्दे पर चलती छाया को वास्तविक मानकर हँसता, रोता और आवेश में आ जाता है, जबकि वह सब कृत्रिम होता है, उसी प्रकार आम आदमी भी प्रकृति के रचे प्रपंचों (मायाजाल) में उलझकर उसे ही वास्तविक समझ लेता है और अपनी सुध-बुध खो बैठता है।

2. प्रश्न: मनुष्य अपनी दुनिया कैसे बनाता है? मकड़ी के उदाहरण से समझाएँ।

उत्तर: लेखक के अनुसार, हर मनुष्य अपने स्तर की दुनिया अपने हाथों से स्वयं बनाता है। जैसे मकड़ी अपना जाल स्वयं बुनती है और जब उसे वह बंधन लगता है तो उसे समेटकर निगल लेती है और स्वतंत्र हो जाती है, वैसे ही मनुष्य भी अपने बनाए हुए बंधनों से मुक्त हो सकता है। दुनिया की अड़चनें तो धूप-छाँव की तरह आती-जाती रहती हैं।

3. प्रश्न: परिष्कृत जीवात्मा को परब्रह्म क्यों कहा गया है? हीरे और स्रवित जल का उदाहरण देकर स्पष्ट करें।

उत्तर: परिष्कृत जीवात्मा को परब्रह्म इसलिए कहा गया है क्योंकि जैसे कोयला ही परिष्कृत होकर हीरा बनता है और भाप से उड़ाया हुआ पानी ही शुद्ध होकर स्रवित जल (Distilled Water) बनता है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपने ऊपर चढ़े कषाय-कल्मषों को उतार फेंके तो उसका दिव्य स्वरूप प्रकट हो जाता है। वह भटका हुआ देवता है, जिसका परिष्कार उसे परमात्मा के स्तर तक पहुँचा सकता है।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: "गई-गुजरी स्थिति में रहने वालों की सहायता करना मानवोचित कर्तव्य है, पर यह चिरस्थायी परिणाम क्यों नहीं दे सकती?" इसके स्थायी समाधान के लिए क्या आवश्यक है?

उत्तर: ऊपर से थोपी गई सहायता चिरस्थायी परिणाम इसलिए नहीं दे सकती क्योंकि असली समस्या व्यक्ति के मनोबल की कमी है। स्थायी समाधान के लिए आवश्यक है कि असहाय कहे जाने वाले लोगों का मनोबल उठाया जाए और उनमें पुरुषार्थपूर्वक आगे बढ़ने का संकल्प उभारा जाए। जब तक उनमें स्वयं अपनी सहायता करने की उत्कंठा का चुंबकत्व पैदा नहीं होगा, तब तक बाहरी सहायता प्रभावी नहीं होगी, क्योंकि "ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता आप करते हैं"।

2. प्रश्न: यदि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है, तो लोग अक्सर अपनी दुर्दशा के लिए परिस्थितियों को दोष क्यों देते हैं? लेखक के अनुसार, इस मानसिकता का मूल कारण क्या है?

उत्तर: लेखक के अनुसार, जो लोग खुद को दीन-हीन, अभागा और बाधित समझते हैं, वे अनुभव करते हैं कि वे परिस्थितियों से जकड़े हुए हैं। वे अपनी मान्यता के कारण ही परिस्थितियों पर दोषारोपण करते हैं। इसके विपरीत, जिनकी मान्यता यह है कि उनमें महानता तक पहुँचने की शक्ति है, वे प्रतिकूलताओं को भी अनुकूलता में बदल लेते हैं। इस मानसिकता का मूल कारण अपनी अंतर्निहित शक्ति और क्षमता को न पहचानना और यह भूल जाना है कि व्यक्तित्व और कृतित्व को ऊँचा उठाने या गिराने के लिए व्यक्ति स्वयं ही सर्वाधिक उत्तरदायी है।

अध्याय 2: उसे जड़ में नहीं, चेतन में खोजें

सरल स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: ईश्वर से मिलने का सबसे निकटवर्ती स्थान कहाँ है?

उत्तर: ईश्वर से मिलने का सबसे निकटवर्ती स्थान अपना अन्तःकरण ही है।

2. प्रश्न: ईश्वर का स्वरूप कैसा है, जड़ या चेतन?

उत्तर: ईश्वर जड़ नहीं, बल्कि चेतन है।

3. प्रश्न: ईश्वर दर्शन और प्रभु सान्निध्य का अनुभव करने के लिए व्यक्ति को क्या करना चाहिए?

उत्तर: इसके लिए व्यक्ति को बाहरी दुनिया से आँखें बंद करके अपने ही अन्तराल (अन्तःकरण) में प्रवेश करना चाहिए।

4. प्रश्न: सूफी संत ने भक्त को मंदिर में प्रतिमा के स्थान पर क्या रखने की सलाह दी और क्यों?

उत्तर: सूफी संत ने प्रतिमा की जगह एक विशाल दर्पण रखने की सलाह दी, ताकि दर्शक उसमें अपनी छवि देखकर यह समझ सकें कि ईश्वर उनके ही शरीर के भीतर है या यह कि परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा बन सकती है।

5. प्रश्न: मनःशास्त्र के विज्ञानी परिस्थितियों की जन्मदात्री किसे मानते हैं?

उत्तर: मनःशास्त्र के विज्ञानी मनःस्थिति को ही परिस्थितियों की जन्मदात्री मानते हैं, क्योंकि मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही करता और बन जाता है।

6. प्रश्न: संसार की तुलना गुम्बज से क्यों की गई है?

उत्तर: क्योंकि जैसे गुम्बज में हमारी ही आवाज गूँजकर वापस आती है, उसी प्रकार यह संसार भी हमारे ही कर्मों और विचारों को प्रतिध्वनित करता है। हम जैसे होते हैं, वैसे ही लोग और परिस्थितियाँ हमारे आस-पास एकत्रित हो जाती हैं।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: "मानवी अन्तःकरण ही ईश्वर का सबसे निकटवर्ती और सुनिश्चित स्थान हो सकता है।" इस कथन का क्या तात्पर्य है?

उत्तर: इस कथन का तात्पर्य है कि ईश्वर एक चेतन सत्ता है और चेतना का मिलन चेतना से ही हो सकता है। बाहरी दुनिया में या जड़ प्रतिमाओं में ईश्वर को खोजना एक भटकाव हो सकता है। वास्तविक ईश्वर-अनुभूति अपने भीतर की चेतना, यानी आत्मा को परिष्कृत करके ही संभव है, क्योंकि परमात्मा का अंश आत्मा के रूप में हमारे भीतर ही विराजमान है।

2. प्रश्न: अपने स्वरूप को भूल जाने का मनुष्य के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर: अध्यात्मवेत्ताओं के अनुसार, मनुष्य अपने स्वरूप, अपनी सत्ता, अपनी महत्ता और जीवन के लक्ष्य को भूलकर ही अनगिनत विपत्तियों में फँसता है। यदि वह स्वयं को सुधार ले, तो उसका सुधरा हुआ प्रतिबिम्ब उसे अन्य व्यक्तियों और परिस्थितियों में भी दिखाई देने लगेगा।

3. प्रश्न: परिस्थितियों को सुधारने के लिए बाहरी सहायता खोजने की अपेक्षा स्वयं को सुधारना क्यों अधिक बेहतर है?

उत्तर: यह इसलिए बेहतर है क्योंकि मनःस्थिति ही परिस्थितियों को जन्म देती है। हमारे भले-बुरे कर्म ही सौभाग्य या संकट बनकर सामने आते हैं। अतः बाहरी सहायता या अनुकूल परिस्थितियों की तलाश में भटकने के बजाय यदि हम अपनी भावना, मान्यता, विचार और गतिविधियों को परिष्कृत करें, तो परिस्थितियाँ स्वतः ही अनुकूल होने लगती हैं। यह बिना भटकाव का एक सुनिश्चित मार्ग है।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: लेखक यह क्यों कहते हैं कि "भावुकता भड़काने या काल्पनिक उड़ानें उड़ाने से बात कुछ बनती नहीं"? ईश्वर को पाने के संदर्भ में इसका व्यावहारिक अर्थ क्या है?

उत्तर: लेखक ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि ईश्वर कोई बाहरी सत्ता नहीं है जिसे भावनात्मक कहानियों या कल्पनाओं से पाया जा सके। इसका व्यावहारिक अर्थ है कि ईश्वर को खोजने के लिए दूर-दराज की भाग-दौड़ या कर्मकांडों में उलझने के बजाय अपने अंतःकरण को टटोलना चाहिए। ईश्वर एक चेतन तत्व है जिसे अपनी ही चेतना (आत्मा) को परिष्कृत करके अनुभव किया जा सकता है। सरलता को कठिन बना लेना मनुष्य की अपनी चेष्टा पर निर्भर है। अंतःकरण में स्थित परमेश्वर ही वरदान देने में सक्षम है; बाहरी देवता या लोग तो केवल उस आंतरिक चेतना का स्मरण दिला सकते हैं।

2. प्रश्न: "सज्जनों को उच्चस्तरीय प्रतिभाओं के साथ जुड़ने का लाभ मिलता है," जबकि "दुष्ट-दुर्जनों के इर्द-गिर्द उसी स्तर की मंडली बनती है।" यह नियम व्यक्ति और समाज के विकास को कैसे प्रभावित करता है?

उत्तर: यह नियम 'आकर्षण के सिद्धांत' की तरह काम करता है, जहाँ समान विचार और प्रवृत्ति वाले लोग एक-दूसरे की ओर खिंचते हैं। यह व्यक्ति और समाज के विकास को दो तरह से प्रभावित करता है:

- **सकारात्मक प्रभाव:** जब सज्जन और प्रतिभाशाली लोग एक साथ आते हैं, तो वे एक-दूसरे को सहयोग देते हैं, जिससे उनकी भली अभिरुचि और अधिक उत्तेजित होती है। इससे व्यक्तिगत उन्नति के साथ-साथ एक सकारात्मक और प्रगतिशील समाज का निर्माण होता है।

- **नकारात्मक प्रभाव:** इसके विपरीत, जब दुष्ट प्रवृत्ति के लोग इकट्ठे होते हैं, तो वे एक-दूसरे के बुरे कर्मों को बढ़ावा देते हैं, जिससे विनाशकारी और पतित समाज का निर्माण होता है। यह दिखाता है कि व्यक्तिगत सुधार

ही सामाजिक सुधार की पहली सीढ़ी है।

अध्याय 3: निकृष्टता से उबरें, महानता अपनाएँ

सरल स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: बादल का पानी कहाँ जमा होता है और कहाँ नहीं? इससे क्या शिक्षा मिलती है?

उत्तर: बादल का पानी वहीं जमा होता है जहाँ गहराई या पात्रता होती है; रेगिस्तान और चट्टानों पर नहीं। इससे यह शिक्षा मिलती है कि कृपा या अवसर का लाभ उठाने के लिए व्यक्ति में पात्रता होनी आवश्यक है।

2. प्रश्न: किन तीन चीजों को मनुष्य के लिए हथकड़ी, बेड़ी और जंजीर बताया गया है?

उत्तर: लोभ को हथकड़ी, मोह को बेड़ी और अहंकार को जंजीर बताया गया है।

3. प्रश्न: लेखक के अनुसार, कुसंस्कारों और कुप्रचलनों का मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर: कुसंस्कारों और कुप्रचलनों का दुहरा दबाव मनुष्य की मौलिक चिंतन शक्ति को रोक देता है और उसे उत्कृष्टता की दिशा में आगे बढ़ने से रोकता है।

4. प्रश्न: तृष्णा की खाई को कौन-से प्रबल पराक्रमी भी नहीं पाट सके?

उत्तर: रावण, हिरण्यकश्यपु और वृत्तासुर जैसे प्रबल पराक्रमी भी तृष्णा की खाई को नहीं पाट सके।

5. प्रश्न: मानव जीवन का परम पुरुषार्थ क्या है?

उत्तर: मानव जीवन का परम पुरुषार्थ अपनी निकृष्ट मानसिकता से त्राण पाना तथा भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण वाले स्वभाव को छोड़ना है।

6. प्रश्न: लेखक ने मनुष्य को किनका वंशधर बताया है?

उत्तर: लेखक ने मनुष्य को ऋषियों, तपस्वियों, मनस्वियों और मनीषियों का वंशधर बताया है।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: "धुलाई के बिना रँगाई निखरती कहाँ है?" इस कथन का जीवन में उत्कृष्टता प्राप्त करने के संदर्भ में क्या अर्थ है?

उत्तर: इस कथन का अर्थ है कि महानता या उत्कृष्टता अपनाने से पहले अपने भीतर के दोष-दुर्गुणों को हटाना आवश्यक है। जैसे मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता या जलते अंगारे पर राख की परत उसकी गर्मी और चमक को ढक देती है, उसी प्रकार जब तक मनुष्य लोभ, मोह, अहंकार, वासना और तृष्णा जैसी निकृष्टताओं से मुक्त नहीं होता, तब तक उसकी आंतरिक क्षमताएँ और महानता प्रकट नहीं हो सकतीं।

2. प्रश्न: औसत आदमी की मानसिकता की तुलना जादुई राजमहल में दुर्योधन की स्थिति से क्यों की गई है?

उत्तर: यह तुलना इसलिए की गई है क्योंकि स्वार्थ सिद्धि की लिप्सा के कारण औसत आदमी की विवेक-बुद्धि

भ्रमित हो जाती है। जैसे दुर्योधन को जादुई महल में जल की जगह थल और थल की जगह जल दिखाई दे रहा था, वैसे ही व्यामोह में फँसा व्यक्ति सही-गलत का भेद नहीं कर पाता। वह जो करना चाहिए, उसे नहीं करता और जो नहीं करना चाहिए, वही करता रहता है। यह उसकी दुर्गति का कारण बनता है।

3. प्रश्न: लेखक सड़े नाले के कीड़ों का उदाहरण क्यों देते हैं? यह उदाहरण मानवीय पतन की किस अवस्था को दर्शाता है?

उत्तर: लेखक यह उदाहरण उन लोगों के लिए देते हैं जो निकृष्ट परिस्थितियों में रहते-रहते इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें अपनी दयनीयता का अनुभव तक नहीं होता। यह मानवीय पतन की उस अवस्था को दर्शाता है जहाँ व्यक्ति की उन्नति करने की आकांक्षा ही मर जाती है। जब उत्कृष्ट जीवन की चाह ही समाप्त हो जाए, तो प्रगति के लिए कोई हलचल कैसे संभव हो सकती है?

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: मनुष्य को "नर-कीटक, नर-पशु, नर-पिशाच" जैसी स्थितियों से निकलकर "नर-नारायण" बनने के लिए किस प्रक्रिया से गुजरना होगा? लेखक के अनुसार यह परिवर्तन क्यों संभव है?

उत्तर: इस परिवर्तन के लिए मनुष्य को "काया-कल्प" जैसी प्रक्रिया से गुजरना होगा। इसका अर्थ है, सबसे पहले अपनी निकृष्ट मानसिकता, भ्रष्ट चिंतन और दुष्ट आचरण को छोड़ने का दृढ़ संकल्प करना। यदि भूल समझ में आ जाए तो उलटे पैर लौटकर नए सिरे से शुरुआत करने में संकोच नहीं करना चाहिए। यह परिवर्तन इसलिए संभव है क्योंकि "नर-कीटक" जैसी स्थिति मनुष्य ने अपनी मर्जी से स्वीकार की है; वह मूलतः ऋषियों और मनीषियों का वंशधर है। यदि वह अपनी आंतरिक शक्ति को पहचान कर परिवर्तन का निश्चय कर ले, तो उसे महामानव बनने में देर नहीं लगेगी।

2. प्रश्न: "अन्तरात्मा ऊँचा उठने के लिए कहती है और सिर पर छाया हुआ दुष्प्रवृत्तियों का आकाश नीचे गिरने के लिए बाधित करता है।" इस आंतरिक संघर्ष में विजय कैसे प्राप्त की जा सकती है?

उत्तर: इस आंतरिक संघर्ष में विजय प्राप्त करने का एक ही उपाय है: दोष-दुर्गुणों की उस भारी चट्टान को किसी भी कीमत पर हटाना जो सिर पर लदी है। यह चट्टान कुसंस्कारों, कुप्रचलनों, वासना, तृष्णा और अहंकार से बनी है। इसके लिए व्यक्ति को सबसे पहले अपनी दयनीय स्थिति को स्वीकार करना होगा और उससे बाहर निकलने की तीव्र आकांक्षा जगानी होगी। जब तक वह इन बोझिल विपन्नताओं को हटा नहीं देता, तब तक आगे बढ़ना संभव नहीं होगा। विजय के लिए दृढ़ संकल्प और अपनी निकृष्टता को छोड़ने का साहस अनिवार्य है।

अध्याय 4: धर्म धारणा की व्यावहारिकता

सरल स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: व्यक्तित्व को प्रखर बनाने के लिए क्या आवश्यक है?

उत्तर: व्यक्तित्व को प्रखर बनाने के लिए चिंतन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश आवश्यक है।

2. प्रश्न: ओजस्, तेजस् और वर्चस् किसे कहते हैं?

उत्तर: समर्थता को ओजस्, मनस्विता को तेजस् और जीवट को वर्चस् कहते हैं।

3. प्रश्न: कौन लोग संसार के वातावरण का सुधार कर सकते हैं?

उत्तर: संसार के वातावरण का सुधार वे ही लोग कर सकते हैं, जिन्होंने स्वयं को सुधार कर अपनी सृजन-क्षमता को असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया हो।

4. प्रश्न: लेखक के अनुसार, वह कौन-सा एक देवता है जिसकी साधना का सत्परिणाम तुरंत मिलता है?

उत्तर: वह देवता "जीवन" है। जीवन का सुधरा हुआ स्वरूप ही कल्पवृक्ष के समान है जो तत्काल सत्परिणाम देता है।

5. प्रश्न: प्राचीन काल में बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए क्या किया जाता था और अब क्या करना पर्याप्त होगा?

उत्तर: प्राचीन काल में बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए अखाड़ों में कड़ी कसरत करने भेजा जाता था। पर अब की रुग्ण पीढ़ी के लिए स्वास्थ्य रक्षा के सामान्य नियमों से अवगत कराना ही पर्याप्त होगा।

6. प्रश्न: प्राचीन काल की तप-साधना की तुलना आज के किन अभ्यासों से की जा सकती है?

उत्तर: प्राचीन काल की तप-साधना की तुलना आज व्यक्तित्व को विकृतियों से दूर रखने वाली आरंभिक आध्यात्मिक साधनाओं से की जा सकती है।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: लेखक क्यों कहते हैं कि "बदलते समय में अनगढ़ों का कूड़ा-कचरा कहीं झाड़-बुहार कर दूर फेंक दिया जायेगा"? इसका क्या तात्पर्य है?

उत्तर: इसका तात्पर्य है कि आने वाले युग-परिवर्तन के समय में केवल वही लोग टिक पाएंगे जो समर्थ, सक्षम और प्रखर व्यक्तित्व वाले होंगे। जिनकी जीवनी शक्ति सुदृढ़ होती है, वे ही बीमारियों और तूफानों से बच पाते हैं। जो लोग अनगढ़, अस्त-व्यस्त और आलस्य-प्रमाद में जीवन जीते हैं, वे बदलते युग की चुनौतियों का सामना नहीं कर पाएंगे और अप्रासंगिक हो जाएंगे। इसलिए हर किसी को नए युग का नया मनुष्य बनने की होड़ लगानी पड़ेगी।

2. प्रश्न: "उपकरण ढालने के लिए तदनुरूप साँचा बनाए बिना काम नहीं चलता।" इस कथन का समाज-सुधार के संदर्भ में क्या अर्थ है?

उत्तर: इस कथन का अर्थ है कि यदि हम समाज को बदलना चाहते हैं और लोगों को एक आदर्श स्वरूप में ढालना चाहते हैं, तो सबसे पहले हमें स्वयं को उस आदर्श साँचे के रूप में प्रस्तुत करना होगा। समाज सुधार का प्रयोग सर्वप्रथम अपने ऊपर ही किया जाना चाहिए। जब हम स्वयं को सुधार कर यह सिद्ध कर देते हैं कि परिवर्तन संभव है, तभी हम दूसरों को बदलने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं और एक प्रामाणिक उदाहरण बन सकते हैं।

3. प्रश्न: "लोग न जाने क्यों घड़े में ऊँट खोजते-फिरते हैं?" लेखक ने ऐसा क्यों कहा है?

उत्तर: लेखक ने ऐसा इसलिए कहा है क्योंकि लोग अपनी समस्याओं के समाधान और ऋद्धि-सिद्धियों के लिए बाहरी देवी-देवताओं की पूजा-उपासना में भटकते रहते हैं, जबकि वास्तविक शक्ति और समाधान का स्रोत उनके अपने भीतर ही है। मनुष्य का अपना परिष्कृत जीवन ही वह कल्पवृक्ष है जो सभी मनोकामनाएं पूरी कर सकता है। अपने भीतर की इस अपार क्षमता को न खोजकर बाहर भटकना ही "घड़े में ऊँट खोजना" है। इसके लिए आत्मविश्वास जगाना और आत्म-परिष्कार पर विश्वास करना आवश्यक है।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: धर्म की पारंपरिक धारणा (पूजा-उपासना) और लेखक द्वारा प्रस्तुत "व्यावहारिक धर्म" में क्या मौलिक अंतर है? लेखक व्यावहारिक धर्म को क्यों अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं?

उत्तर: मौलिक अंतर यह है कि पारंपरिक धारणा अक्सर कर्मकांडों और बाहरी देवी-देवताओं की पूजा तक सीमित रह जाती है, जिसके परिणाम संदिग्ध होते हैं और भक्त प्रायः निराश होते हैं। इसके विपरीत, लेखक का "व्यावहारिक धर्म" आत्म-परिष्कार पर केंद्रित है। यह चिंतन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्टता लाने पर जोर देता है। लेखक इसे अधिक महत्वपूर्ण इसलिए मानते हैं क्योंकि इसका परिणाम "हाथों-हाथ नकद धर्म की तरह" मिलता है। जब व्यक्ति स्वयं को सद्गुणों से संपन्न करता है, तो उसकी समर्थता (ओजस्), मनस्विता (तेजस्), और जीवट (वर्चस्) जैसी दिव्य संपदाएं जाग्रत होती हैं, जिनसे वह न केवल अपना बल्कि समाज का भी कल्याण कर सकता है। यह एक प्रामाणिक और परिणामदायक मार्ग है।

2. प्रश्न: "कायाकलेवर जिसका जैसा ढल चुका है, वह प्रायः उसी आकार-प्रकार का रहेगा; पर गुण, कर्म, स्वभाव में अभीष्ट उत्कृष्टता का समावेश करते हुए ऐसा कुछ चमत्कार उत्पन्न किया जा सकता है, जिसके कारण इसी काया में देवत्व के दर्शन हो सकें।" इस कथन का विश्लेषण करें।

उत्तर: यह कथन मनुष्य के विकास की अपार संभावनाओं को रेखांकित करता है। इसका विश्लेषण इस प्रकार है:

- शारीरिक सीमाओं की स्वीकृति: लेखक स्वीकार करते हैं कि मनुष्य की बाहरी शारीरिक बनावट

(कायाकलेवर) को बदलना लगभग असंभव है।

◦ **आंतरिक परिवर्तन पर जोर:** असली चमत्कार बाहरी रूप में नहीं, बल्कि आंतरिक गुणों में छिपा है। व्यक्ति अपने गुण (सोच), कर्म (कार्य) और स्वभाव (आदतें) में उत्कृष्टता लाकर अपना संपूर्ण व्यक्तित्व बदल सकता है।

◦ **देवत्व की प्राप्ति:** जब कोई व्यक्ति अपने गुण, कर्म और स्वभाव को परिष्कृत कर लेता है, तो उसका आभामंडल इतना दिव्य हो जाता है कि लोग उसके बाहरी स्वरूप को भूलकर उसके भीतर देवत्व का अनुभव करने लगते हैं। यह आत्म-परिष्कार की सर्वोच्च अवस्था है, जहाँ साधारण मनुष्य भी देवतुल्य बन जाता है। यह दर्शाता है कि सच्ची सुंदरता और दिव्यता आंतरिक है, बाहरी नहीं।

अध्याय 5: पंचशीलों का अभ्यास करें

सरल स्तर के प्रश्न

1. **प्रश्न:** आज के समय के लिए व्यावहारिक पंचशील कौन-से हैं?

उत्तर: आज के व्यावहारिक पंचशील हैं: श्रमशीलता, मितव्ययिता, शिष्टता, सुव्यवस्था और सहकारिता।

2. **प्रश्न:** श्रम न करने की प्रवृत्ति समाज को कैसे अपंग बना रही है?

उत्तर: कामचोरी और कम श्रम में अधिक लाभ पाने की प्रवृत्ति से शारीरिक-मानसिक असमर्थता पनपती है, आर्थिक प्रगति रुक जाती है और समाज में विडम्बनाएँ बढ़ती हैं, जिससे समाज अपंग जैसा हो जाता है।

3. **प्रश्न:** फिजूलखर्ची या अपव्यय के क्या दुष्परिणाम होते हैं?

उत्तर: अपव्यय के कारण समय और पैसे की बर्बादी होती है, जिसे बचाने पर कई अच्छे काम हो सकते हैं। फिजूलखर्ची की ललक पूरी करने के लिए व्यक्ति बेईमानी का सहारा लेता है और यह "सादा जीवन-उच्च विचार" की उत्कृष्टता को समाप्त कर देती है।

4. **प्रश्न:** शालीनता के बारे में कौन-सी महत्वपूर्ण उक्ति बताई गई है?

उत्तर: यह उक्ति है: "शालीनता बिना मोल मिलती है, परन्तु उससे सब कुछ खरीदा जा सकता है"।

5. **प्रश्न:** सुव्यवस्था का क्या तात्पर्य है?

उत्तर: सुव्यवस्था का तात्पर्य है अपने समय, श्रम, मनोयोग और सभी संसाधनों का इस प्रकार सुनियोजन करना कि उनकी अस्त-व्यस्तता से बचते हुए उनका अधिकतम लाभ उठाया जा सके।

6. **प्रश्न:** सहकारिता क्यों आवश्यक है?

उत्तर: सहकारिता इसलिए आवश्यक है क्योंकि बड़े कार्य संयुक्त शक्ति से ही संपन्न होते हैं। परिवार, कारोबार और लोक-व्यवहार में सामंजस्य बनाए रखने के लिए यह अनिवार्य है। सहकारिता से ही संघ-शक्ति जाग्रत होती है।

7. प्रश्न: सद्गुणों को अपने स्वभाव में उतारने का सबसे अच्छा अवसर कहाँ मिलता है?

उत्तर: इन सद्गुणों को अपने दृष्टिकोण, स्वभाव और अभ्यास में उतारने का सबसे अच्छा अवसर परिवार-परिकर के बीच मिलता है।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: लेखक ने प्राचीन काल के यम-नियमों (सत्य, अहिंसा आदि) की तुलना में आज के पंचशीलों (श्रमशीलता, मितव्ययिता आदि) को अधिक व्यावहारिक क्यों माना है?

उत्तर: लेखक ऐसा इसलिए मानते हैं क्योंकि प्राचीन काल का सामाजिक वातावरण उन यम-नियमों के पालन के लिए अनुकूल रहा होगा, परंतु आज की परिस्थितियों में उनका पूर्ण रूप से पालन करना सर्वसाधारण के लिए संभव नहीं दीखता। इसके विपरीत, श्रमशीलता, मितव्ययिता, शिष्टता, सुव्यवस्था और सहकारिता ऐसे व्यावहारिक गुण हैं जिन्हें आज की जीवनशैली में अपनाना संभव है। यदि इन पंचशीलों को आदतों में शामिल कर लिया जाए, तो यह प्राचीन काल की तप-साधना के बराबर ही साधनात्मक साहस माना जाएगा।

2. प्रश्न: "अशिष्ट व्यक्ति अपनों को भी पराया कर डालता है।" इस कथन को समझाते हुए शिष्टता के सामाजिक और व्यक्तिगत लाभों का वर्णन करें।

उत्तर: इस कथन का अर्थ है कि अहंकार और दूसरों के प्रति असम्मान से भरा व्यवहार (अशिष्टता) व्यक्ति के संबंधों को नष्ट कर देता है, यहाँ तक कि उसके अपने लोग भी उससे दूर हो जाते हैं। इसके विपरीत, शिष्टता के अनेक लाभ हैं:

- **व्यक्तिगत लाभ:** शिष्ट व्यक्ति की छवि अच्छी बनती है और उसका व्यवहार उसकी भलमनसाहत का प्रतीक होता है।
- **पारिवारिक लाभ:** जिस परिवार में शालीनता का अभ्यास होता है, वहाँ कलह नहीं होती और सौमनस्य का स्वर्गीय वातावरण बना रहता है।
- **सामाजिक लाभ:** शालीन व्यक्ति के मित्र और सहयोगी आसानी से बढ़ते हैं, जो जीवन की सफलता में असाधारण योगदान देते हैं।

3. प्रश्न: सहकारिता के अभाव में योग्य कार्यकर्ता होने पर भी कोई संस्था या व्यवसाय प्रगति क्यों नहीं कर सकता?

उत्तर: योग्य कार्यकर्ता होने पर भी सहकारिता के अभाव में प्रगति इसलिए संभव नहीं है क्योंकि बड़े और स्थायी कार्यों के लिए संयुक्त शक्ति की आवश्यकता होती है। सहकारिता का अर्थ है मिल-जुलकर काम करना और उदारतापूर्वक आदान-प्रदान करना। इसके बिना टीम में सामंजस्य नहीं बन पाता, जिससे आंतरिक कलह और असहयोग की स्थिति उत्पन्न होती है। संकीर्ण स्वार्थपरता व्यक्ति को एकाकी और उपेक्षित बना देती है।

देव शक्तियों के संयोग से ही दुर्गा के प्रादुर्भाव की कथा की तरह, महान उपलब्धियाँ केवल संगठित और सहकारी प्रयासों से ही संभव हैं।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: "परिवार संस्था ही नर-रत्नों की खदान बन सकती है।" इस कथन को सिद्ध करने के लिए पंचशील के सिद्धांतों को पारिवारिक जीवन में कैसे लागू किया जा सकता है? विस्तार से बताएं।

उत्तर: यह कथन बिल्कुल सत्य है। परिवार को "नर-रत्नों की खदान" बनाने के लिए पंचशील के सिद्धांतों को इस प्रकार लागू किया जा सकता है:

- **श्रमशीलता:** घर के सभी सदस्य, बच्चे और बड़े, मिलकर घर के काम करें। इससे बच्चों में श्रम का सम्मान करने और आलस्य त्यागने का संस्कार पड़ेगा।

- **मितव्ययिता:** परिवार में अनावश्यक खर्चों और फैशनपरस्ती पर नियंत्रण रखा जाए। बच्चों को संसाधनों का सदुपयोग और बचत का महत्त्व सिखाया जाए।

- **शिष्टता:** परिवार के सदस्य एक-दूसरे से विनम्रता और सम्मान से बात करें, चाहे वे बड़े हों या छोटे। इससे घर में कलह रहित और प्रेमपूर्ण वातावरण बनेगा।

- **सुव्यवस्था:** घर की वस्तुओं को व्यवस्थित रखना, समय का पालन करना और अपनी दिनचर्या को सुनियोजित बनाना—ये आदतें परिवार के सभी सदस्य अपनाएं।

- **सहकारिता:** परिवार के सदस्य एक-दूसरे के कार्यों में सहयोग करें, सुख-दुःख में साथ दें। इससे उनमें टीम-भावना और उदारता का विकास होगा। जब परिवार में इन सद्गुणों का अभ्यास होता है, तो बच्चे सुसंस्कारी बनते हैं और भविष्य में समाज के लिए "नर-रत्न" सिद्ध होते हैं।

2. प्रश्न: पंचशील के पाँचों सिद्धांत (श्रमशीलता, मितव्ययिता, शिष्टता, सुव्यवस्था, सहकारिता) एक-दूसरे से किस प्रकार जुड़े हुए हैं? एक के अभाव का दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर: ये पाँचों सिद्धांत एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं और एक मजबूत चरित्र की नींव बनाते हैं।

- **श्रमशीलता और मितव्ययिता:** परिश्रमी व्यक्ति ही धन और संसाधनों का मूल्य समझता है, जिससे वह स्वाभाविक रूप से मितव्ययी होता है। आलसी व्यक्ति अक्सर दूसरों पर निर्भर रहता है और अपव्यय करता है।

- **शिष्टता और सहकारिता:** शिष्ट व्यवहार सहकारिता की पहली शर्त है। एक अशिष्ट व्यक्ति दूसरों के साथ मिलकर काम नहीं कर सकता क्योंकि उसका व्यवहार संबंधों को खराब कर देता है। विनम्र व्यक्ति ही दूसरों का सहयोग प्राप्त कर सकता है।

- **सुव्यवस्था और श्रमशीलता:** सुव्यवस्था से समय और श्रम का सर्वोत्तम उपयोग होता है, जिससे श्रमशीलता अधिक उत्पादक बन जाती है। अव्यवस्थित व्यक्ति का श्रम अक्सर व्यर्थ जाता है।

◦ सहकारिता और सुव्यवस्था: एक सहकारी समूह या परिवार तभी सुचारू रूप से चल सकता है जब उसमें सुव्यवस्था और अनुशासन हो। एक के अभाव का प्रभाव दूसरों पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी में श्रमशीलता नहीं है, तो वह मितव्ययी नहीं हो सकता। यदि शिष्टता नहीं है, तो सहकारिता असंभव है। और यदि सुव्यवस्था नहीं है, तो श्रम और सहयोग दोनों ही निष्प्रभावी हो जाते हैं। इस प्रकार, ये पाँचों गुण मिलकर एक सफल और मर्यादित जीवन का निर्माण करते हैं।

अध्याय 6: उच्च मानसिकता के चार सूत्र

सरल स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: उच्च मानसिकता के चार सूत्र कौन-से हैं?

उत्तर: उच्च मानसिकता के चार सूत्र हैं: (१) समझदारी, (२) ईमानदारी, (३) जिम्मेदारी, और (४) बहादुरी।

2. प्रश्न: समझदारी का क्या अर्थ है?

उत्तर: समझदारी का अर्थ है तात्कालिक आकर्षण पर संयम रखना और दूरगामी परिणामों को समझकर निर्णय लेना।

3. प्रश्न: लेखक के अनुसार बेईमान व्यक्ति भी कैसा नौकर चाहता है और क्यों?

उत्तर: बेईमान व्यक्ति भी ईमानदार नौकर चाहता है, क्योंकि इससे ईमानदारी की बढी-चढ़ी सामर्थ्य और विश्वसनीयता का पता चलता है।

4. प्रश्न: व्यक्तित्व का शौर्य कैसे निखरता है?

उत्तर: अपनी जिम्मेदारियों को ठीक से निभाने पर ही मनुष्य का शौर्य निखरता है और उसका विश्वास बनता है।

5. प्रश्न: कायरों पर बहादुरों की अपेक्षा अधिक आक्रमण क्यों होते हैं?

उत्तर: क्योंकि कायरों में अनीति के आगे न झुकने की हिम्मत नहीं होती, वे दबने और बचने का प्रयास करते हैं, जिससे आक्रमण करने वालों को प्रोत्साहन मिलता है।

6. प्रश्न: पंचशील और चार वर्चस्व मिलकर कितनी संख्या बनाते हैं और यह संख्या क्यों महत्वपूर्ण है?

उत्तर: ये मिलकर नौ की संख्या बनाते हैं। यह संख्या महत्वपूर्ण है क्योंकि सौर मंडल के ग्रह, नवरत्न और नवधा भक्ति भी नौ की संख्या में ही प्रख्यात हैं।

7. प्रश्न: धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर: धर्म उसे कहते हैं, जो धारण किया जाए, अर्थात् जिसे व्यवहार में उतारा जाए।

8. प्रश्न: प्रतीक पूजा में दीपक और पुष्प किसका संकेत देते हैं?

उत्तर: दीपक ज्ञान के प्रकाश को व्यापक बनाने का संकेत देता है, जबकि पुष्प हँसते-हँसाते और खिलते-खिलाते रहने की प्रकृति अपनाने का संकेत देता है।

9. प्रश्न: गायत्री मंत्र का जप और सूर्य का ध्यान करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर: गायत्री जप का प्रयोजन सामूहिक विवेकशीलता से अनुप्राणित होना है। सूर्य ध्यान का प्रयोजन ऊर्जावान (प्रगतिशील) बनना और ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करना है।

10. प्रश्न: लेखक के अनुसार अपने समय का युग-धर्म क्या है?

उत्तर: अपने समय का युग-धर्म है—जनमानस में दूरदर्शी विवेकशीलता को उभारना तथा चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार में उत्कृष्टता का संवर्धन करना।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: "ईमानदारी बरतना सरल है, जबकि बेईमानी बरतने में अनेक प्रपंच रचने पड़ते हैं।" इस कथन की व्याख्या करें।

उत्तर: इस कथन का अर्थ है कि ईमानदारी एक सीधा और स्वाभाविक मार्ग है। ईमानदार व्यक्ति को कुछ छिपाना या बनावटी व्यवहार नहीं करना पड़ता, जिससे उसका जीवन सरल रहता है। इसके विपरीत, बेईमान व्यक्ति को अपना झूठ छिपाने के लिए लगातार नए झूठ, छल-कपट और प्रपंच रचने पड़ते हैं। उसे हमेशा पकड़े जाने का डर रहता है, जिससे उसका जीवन जटिल और तनावपूर्ण हो जाता है। ईमानदारी से व्यक्ति प्रामाणिक और विश्वासी बनता है, जो उत्कर्ष के लिए पर्याप्त है, जबकि बेईमानी से विश्वास नष्ट हो जाता है।

2. प्रश्न: उपासना में कर्मकांडों के साथ भाव-संवेदना का समावेश क्यों आवश्यक है? बिना भाव के कर्मकांड को "बाल-क्रीड़ा" क्यों कहा गया है?

उत्तर: कर्मकांड केवल बाहरी क्रियाएं हैं। जब तक उनके साथ सच्ची भाव-संवेदना नहीं जुड़ती, वे निरर्थक हैं। भाव-संवेदना का अर्थ है कर्मकांड के पीछे छिपे मर्म को समझना और उसे अपने जीवन में उतारना। उदाहरण के लिए, ईश्वर की प्रतिमा की पूजा का भाव यह है कि हम भी उत्कृष्टता को अपने जीवन में धारण करें। बिना इस भाव के, पूजा-पाठ केवल एक यांत्रिक क्रिया बनकर रह जाता है। इसे "बाल-क्रीड़ा" या खेल-खिलवाड़ इसलिए कहा गया है क्योंकि जैसे बच्चे बिना अर्थ समझे खेल खेलते हैं, वैसे ही बिना भाव के कर्मकांड करने वाला व्यक्ति भी ईश्वर के आदेश और अनुशासन की अवज्ञा करते हुए केवल लकीर पीटता है, जिससे कोई वास्तविक लाभ नहीं होता।

3. प्रश्न: "धर्म और कर्म में उतारी-अपनाई गई उत्कृष्टता-आदर्शवादिता ही...स्वर्ग जैसा उल्लास भरा मानस

और जीवन मुक्ति जैसी तृप्ति...प्रदान कर सकती है।" इस कथन से लेखक क्या सिद्ध करना चाहते हैं?

उत्तर: इस कथन से लेखक यह सिद्ध करना चाहते हैं कि स्वर्ग और मुक्ति मरने के बाद मिलने वाली कोई काल्पनिक वस्तु नहीं है, बल्कि वे इसी जीवन में अनुभव की जाने वाली मानसिक अवस्थाएं हैं। जब कोई व्यक्ति नौ सूत्रीय उत्कृष्टता (पंचशील और चार वर्चस्) को अपने जीवन-व्यवहार में उतारता है, तो उसका मन स्वतः ही उल्लास, तृप्ति, तुष्टि और शांति से भर जाता है। यही स्वर्गीय अनुभूति है। उसे किसी चीज का अभाव या बंधन महसूस नहीं होता, यही जीवन-मुक्ति है। यह परिणाम तुरंत और हाथों-हाथ मिलता है, इसके लिए मृत्यु तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।

4. प्रश्न: "प्रस्तुत अनुपम सुयोग का लाभ उठाएँ" अध्याय में लेखक पाठकों से क्या अपेक्षा कर रहे हैं और 'ज्ञानरथ' की अवधारणा क्या है?

उत्तर: लेखक पाठकों से अपेक्षा कर रहे हैं कि वे केवल पढ़कर ही न रह जाएं, बल्कि नव-जागरण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनें। वे चाहते हैं कि पाठक 'एक से पाँच' वाली गुणन प्रक्रिया अपनाकर अपने जैसे चार और विचारशील साथी तैयार करें और समाज में विवेक का विस्तार करें। 'ज्ञानरथ' या 'चल ज्ञान मंदिर' इसी उद्देश्य की पूर्ति का एक व्यावहारिक उपकरण है। यह एक धकेल गाड़ी है जिसमें टेपरिकॉर्डर, लाउडस्पीकर और प्रेरणादायक साहित्य होता है। इसे कहीं भी ले जाकर संगीत और प्रवचनों के माध्यम से युग-धर्म का संदेश फैलाया जा सकता है। यह ज्ञान-यज्ञ का एक चलता-फिरता माध्यम है।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: लेखक ने हनुमान, अर्जुन, शिवाजी और विवेकानंद जैसे महापुरुषों का उदाहरण देकर पूजा-उपासना की किस नवीन व्याख्या को प्रस्तुत किया है? आज के संदर्भ में एक सच्चे साधक का कर्तव्य क्या होना चाहिए?

उत्तर: लेखक ने इन महापुरुषों का उदाहरण देकर यह समझाया है कि सच्ची पूजा-उपासना केवल कर्मकांड या अनुनय-विनय तक सीमित नहीं है, बल्कि ईश्वरीय इच्छा या महाकाल के आह्वान को सुनकर उसके अनुसार कार्य करना ही सर्वोच्च उपासना है। इन महापुरुषों ने अपनी मनमर्जी की पूजा छोड़कर युग की पुकार सुनी और उसके अनुरूप कार्यरत हो गए। संभवतः उनके इष्टदेव ने स्वयं उनकी उपासना की आवश्यकता पूरी कर दी और उन्हें सफल बनाया। आज के संदर्भ में, एक सच्चे साधक का कर्तव्य अपनी व्यक्तिगत कामनाओं की पूर्ति के लिए पूजा करने के बजाय, यह पहचानना है कि समय की पुकार क्या है। वर्तमान युग-धर्म है—समाज में फैले भ्रष्ट चिंतन और दुष्ट आचरण को हटाकर विवेकशीलता और सत्प्रवृत्तियों का विस्तार करना। अतः, इस महान योजना में भागीदार बनना ही आज की सबसे प्रामाणिक पूजा और साधना है।

2. प्रश्न: "नौ गुणों का नौ सूत्रों वाला यज्ञोपवीत धारण करने की विधा" का क्या प्रतीकात्मक अर्थ है? यह पारंपरिक यज्ञोपवीत से किस प्रकार भिन्न और अधिक व्यापक है?

उत्तर: इसका प्रतीकात्मक अर्थ है पंचशील (श्रमशीलता, मितव्ययिता, शिष्टता, सुव्यवस्था, सहकारिता) और चार वर्चस् (समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी) रूपी नौ गुणों को अपने चिंतन, चरित्र और व्यवहार में गहराई से समाविष्ट करना। यह इन गुणों को जीवन का अभिन्न अंग बनाने का एक संकल्प है। यह पारंपरिक यज्ञोपवीत से भिन्न और अधिक व्यापक है क्योंकि:

- **पारंपरिक यज्ञोपवीत** एक बाहरी प्रतीक है, जो कुछ नियमों और संस्कारों का प्रतिनिधित्व करता है और मुख्य रूप से जन्म या जाति आधारित हो सकता है।

- **नौ सूत्रों वाला यज्ञोपवीत** एक आंतरिक और सार्वभौमिक अवधारणा है। यह किसी बाहरी धागे को नहीं, बल्कि नौ मानवीय सद्गुणों को धारण करने की बात करता है। यह किसी जाति या संप्रदाय तक सीमित नहीं है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य की प्रकृति को बदलकर उसे "द्विजत्व" (दूसरा जन्म) प्रदान करती है, जहाँ आकृति नहीं, बल्कि प्रकृति बदलती है। यह पशु को देवता बनाने वाली एक महान उपलब्धि है, जो व्यक्ति को उसके क्षेत्र में वरिष्ठता प्रदान करती है।

अध्याय 7: सुनिश्चित राजमार्ग अपनाएँ

सरल स्तर के प्रश्न

1. **प्रश्न:** लेखक के अनुसार, कौन लोग भटकते नहीं हैं?

उत्तर: जो लोग राजमार्ग पर चलते हैं, वे भटकते नहीं हैं।

2. **प्रश्न:** कौन लोग झाड़-झंखाड़ों में उलझते हैं?

उत्तर: वे लोग झाड़-झंखाड़ों में उलझते हैं, जिन्हें बिना पुरुषार्थ के जल्दी से बहुत कुछ पा लेने की इच्छा सताती है।

3. **प्रश्न:** नौ सूत्रों वाला यज्ञोपवीत धारण करने की विधा का मुख्य संकेत क्या है?

उत्तर: इसका मुख्य संकेत यह है कि मानव काया को पंचशील और चार वर्चस् रूपी नौ गुणों से सुसज्जित किया जाए।

4. **प्रश्न:** "द्विजत्व" या "दूसरा जन्म" किसे कहा गया है?

उत्तर: पशु को देवता बना देने वाली महान उपलब्धि को "द्विजत्व" कहा गया है, जिसमें व्यक्ति की आकृति नहीं, बल्कि प्रकृति बदल जाती है।

5. **प्रश्न:** धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर: धर्म उसे कहते हैं, जो धारण किया जाए, अर्थात् जिसे व्यवहार में उतारा जाए।

6. **प्रश्न:** धर्म के तत्त्वज्ञान को जीवन में उतारने के लिए लेखक ने किसका उदाहरण दिया है?

उत्तर: लेखक ने व्यायाम का उदाहरण देते हुए कहा है कि जैसे व्यायाम किए बिना कोई पहलवान नहीं बन सकता, उसी प्रकार धर्म को व्यवहार में उतारे बिना उसका लाभ नहीं मिल सकता।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. **प्रश्न:** "आनन-फानन इन्द्र जैसा वर्चस् और कुबेर जैसा वैभव कहीं से भी उड़ा लाने की मानसिकता ही लोगों को हैरान करती रहती है।" इस पंक्ति का क्या आशय है और यह लोगों को कैसे भ्रमित करती है?

उत्तर: इस पंक्ति का आशय यह है कि कई लोग बिना मेहनत और धैर्य के तुरंत सफलता पाना चाहते हैं। यही मानसिकता उन्हें शॉर्टकट या चमत्कारी सिद्धियों के भ्रम में डालती है, जिससे वे साधना के प्रामाणिक और सुनिश्चित "राजमार्ग" से भटक जाते हैं। इसी कारण वे साधना से सिद्धि के सिद्धांत पर लांछन भी लगाते हैं।

2. **प्रश्न:** "नौ गुणों का नौ सूत्रों वाला यज्ञोपवीत" पारंपरिक यज्ञोपवीत से किस प्रकार अधिक व्यापक और व्यावहारिक है?

उत्तर: यह यज्ञोपवीत पारंपरिक यज्ञोपवीत से अधिक व्यापक है क्योंकि यह किसी बाहरी प्रतीक या कर्मकांड पर नहीं, बल्कि आंतरिक गुणों को धारण करने पर बल देता है। पारंपरिक यज्ञोपवीत एक संस्कार का प्रतीक हो सकता है, जबकि नौ गुणों (पंचशील और चार वर्चस्) को अपनाना व्यक्ति के चिंतन, चरित्र और स्वभाव में मौलिक परिवर्तन लाता है। यह किसी बाहरी धन्वन्तरि या अश्विनी कुमारों के अनुग्रह पर निर्भर नहीं है, बल्कि व्यक्ति के अपने पुरुषार्थ से संभव होने वाला कायाकल्प है।

3. **प्रश्न:** लेखक क्यों कहते हैं कि "मिठाई-मिठाई रटने से मुँह मीठा नहीं होता"? धर्म-धारणा के संदर्भ में इसका क्या अर्थ है?

उत्तर: इसका अर्थ है कि केवल धर्म की बातें करने, सुनने या उसके बारे में पढ़ने से कोई लाभ नहीं होता, जब तक कि उन सिद्धांतों को जीवन में न उतारा जाए। जैसे मिठाई का स्वाद उसे खाने और पचाने से मिलता है, वैसे ही धर्म का वास्तविक लाभ (शांति, तृप्ति, उल्लास) उसे अपने आचरण में "धारण" करने से ही मिलता है।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. **प्रश्न:** लेखक ने धर्म की विभिन्न मान्यताओं के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए दूध और मक्खन का उदाहरण क्यों दिया है? आज के समय में इस समन्वय की क्या आवश्यकता है?

उत्तर: लेखक ने यह उदाहरण यह समझाने के लिए दिया है कि जैसे अनेक गायों का दूध मिलाकर एक ही मथानी से एक ही प्रकार का मक्खन निकाला जा सकता है, उसी प्रकार विभिन्न धर्म-संप्रदायों की अच्छी बातों का सार निकालकर एक सर्वमान्य और सर्वप्रिय आभूषण (नौ रत्न रूपी गुण) बनाया जा सकता है। आज के समय में जब धार्मिक मतभेद बढ़ रहे हैं, तब इस समन्वय की अत्यधिक आवश्यकता है ताकि धर्म के मूल तत्व (उत्कृष्टता और आदर्शवादिता) को अपनाकर समाज को एकजुट किया जा सके।

2. प्रश्न: नौ सूत्रीय उत्कृष्टता को अपनाने की प्रक्रिया को "कायाकल्प" क्यों कहा गया है? यह व्यक्ति के जीवन में किस प्रकार का परिवर्तन लाती है?

उत्तर: इसे "कायाकल्प" इसलिए कहा गया है क्योंकि यह व्यक्ति में एक आमूलचूल परिवर्तन लाती है, जो च्यवन ऋषि के पुनर्यौवन प्राप्त करने जैसा है। यह परिवर्तन केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक होता है, जिसमें व्यक्ति की प्रकृति बदल जाती है, आकृति नहीं। इससे व्यक्ति पशुता से देवत्व की ओर बढ़ता है और अपने क्षेत्र में वरिष्ठता प्राप्त करता है। यह एक ऐसा दूसरा जन्म (द्विजत्व) है जिसे व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से प्राप्त करता है।

अध्याय 8: कर्मकाण्डों के साथ भाव सम्बेदना का समावेश

सरल स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: ईश्वर का स्वरूप कैसा है? क्या उसे आँखों से देखा जा सकता है?

उत्तर: ईश्वर सर्वव्यापी और निराकार है, इसलिए उसे देखने की वस्तु नहीं माना गया है। उसकी अनुभूति भाव श्रद्धा के रूप में ही हो सकती है।

2. प्रश्न: ईश्वर की प्रतीक-प्रतिमा क्यों बनाई जाती है?

उत्तर: प्रतीक-प्रतिमा इसलिए बनाई जाती है ताकि साधारण मनुष्य मानवीय कलेवर में उत्कृष्टता की भावना को उस माध्यम से जोड़कर परब्रह्म की कल्पना कर सके।

3. प्रश्न: ईश्वर और जीव के मिलन की प्रक्रिया कैसी है?

उत्तर: यह प्रक्रिया समर्पण की है। जैसे ईंधन अग्नि में मिलकर अग्नि रूप हो जाता है या नाला नदी में मिलकर अपना अस्तित्व समाप्त कर देता है, उसी प्रकार आत्मा को परमात्मा में विलीन होना पड़ता है।

4. प्रश्न: मनुष्य देवता कब बनता है?

उत्तर: जब मनुष्य में देवत्व वाले गुण आ जाते हैं और परमात्मा जैसी व्यापकता ओत-प्रोत हो जाती है, तो वह देवता बन जाता है।

5. प्रश्न: राष्ट्रध्वज का उदाहरण क्यों दिया गया है?

उत्तर: यह समझाने के लिए कि जैसे राष्ट्रध्वज में देशभक्ति की भावना का समावेश करके उसे सम्मान दिया जाता है, वैसे ही प्रतिमा में ईश्वर का आरोपण करके भाव-श्रद्धा को विकसित किया जाता है।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: गीता के अनुसार, ईश्वर का विराट स्वरूप क्या है? और उसे वैज्ञानिक दृष्टि से कैसे समझा जा सकता है?

उत्तर: गीता के अनुसार, यह विशाल विश्व ही विराट ब्रह्म की प्रतिमा है। विश्वव्यापी उत्कृष्टता ही उपासना योग्य ईश्वरीय सत्ता है। वैज्ञानिक दृष्टि से, ईश्वर को इस ब्रह्मांड में एक नियामक सूत्र संचालक के रूप में समझा जा सकता है, जो अनुशासन, संतुलन और सुनियोजन के रूप में प्रकट होता है।

2. प्रश्न: लेखक के अनुसार, ऋषियों और सिद्ध पुरुषों को श्रेय-सम्मान क्यों दिया जाता है?

उत्तर: उन्हें श्रेय-सम्मान इसलिए दिया जाता है क्योंकि वे समर्पण की प्रक्रिया द्वारा देवत्व से संपन्न हो जाते हैं। उनकी आत्मा परमात्मा जैसी स्थिति प्राप्त कर लेती है, जिससे उनमें बहुत कुछ उलट-फेर करने की अलौकिक क्षमता भी आ जाती है।

3. प्रश्न: पति-पत्नी के संबंध का उदाहरण देकर लेखक "द्वैत से अद्वैत" की किस स्थिति को समझाना चाहते हैं?

उत्तर: इस उदाहरण से लेखक समझाना चाहते हैं कि जब दो अलग-अलग अस्तित्व (द्वैत) समर्पण की मानसिकता अपनाकर एक हो जाते हैं, तो वे "अद्वैत" की स्थिति में पहुँच जाते हैं। यही सिद्धांत आत्मा और परमात्मा के मिलन पर भी लागू होता है।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: "ईश्वर को आत्मसमर्पण करना पड़ता है और अपना स्वतंत्र अस्तित्व मिटाकर तद्रूप होने का साहस जुटाना पड़ता है।" इस कथन का आध्यात्मिक साधना के संदर्भ में गहरा अर्थ क्या है?

उत्तर: इसका गहरा अर्थ यह है कि आध्यात्मिक उन्नति के लिए साधक को अपने अहंकार और अपनी पृथक् पहचान को मिटाना पड़ता है। जब तक 'मैं' का भाव (स्वतंत्र अस्तित्व) बना रहता है, तब तक ईश्वर से एकात्मता (तद्रूप होना) संभव नहीं है। यह प्रक्रिया साहस की मांग करती है, क्योंकि इसमें अपने छोटे स्वार्थों और इच्छाओं का त्याग कर स्वयं को पूरी तरह ईश्वरीय इच्छा के प्रति समर्पित करना होता है।

2. प्रश्न: यदि ईश्वर निराकार है, तो फिर अर्जुन, यशोदा आदि को साकार दर्शन का आग्रह क्यों था? लेखक के अनुसार, इस आग्रह का समाधान कैसे हुआ?

उत्तर: उनका आग्रह मानवीय भावनाओं और ईश्वर को एक मूर्त रूप में देखने की स्वाभाविक इच्छा के कारण था। लेखक के अनुसार, जब उनका आग्रह किसी भी प्रकार शांत नहीं हुआ, तब उन्हें तत्त्वज्ञान के प्रकाश से यह प्रेरणा दी गई कि यह संपूर्ण विश्व ही ईश्वर का साकार रूप (विराट ब्रह्म) है। इस प्रकार, उनकी दृष्टि को व्यक्तिगत रूप से हटाकर सार्वभौमिक स्वरूप की ओर मोड़ा गया।

अध्याय 9: प्रतीक पूजा का तत्त्वदर्शन

सरल स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: सभी पूजा पद्धतियों के पीछे एक रहस्य क्या है?

उत्तर: सभी पूजा पद्धतियों के पीछे एक ही रहस्य काम करता है कि अपने आप को परिष्कृत और सुव्यवस्थित बनाया जाए।

2. प्रश्न: ईश्वर की एकमात्र पूजा क्या है?

उत्तर: स्वयं को परिष्कृत और सुव्यवस्थित बनाना ही ईश्वर की एकमात्र पूजा है।

3. प्रश्न: ईश्वर की प्रसन्नता किस एक बात पर केंद्रित है?

उत्तर: ईश्वर की प्रसन्नता इस बात पर केंद्रित है कि किसने उसके विश्व उद्यान को सुन्दर और समुन्नत बनाने के लिए कितना योगदान दिया।

4. प्रश्न: पूजा में प्रयुक्त होने वाले जल और अक्षत का क्या प्रतीकात्मक अर्थ है?

उत्तर: जल का अर्थ है—शीतलता (शांत और संतुलित रहना) और अक्षत का अर्थ है—अपने उपार्जन का एक अंश दिव्य प्रयोजनों के लिए अटूट निष्ठा से लगाना।

5. प्रश्न: गार्ड की लाल और हरी झंडी का उदाहरण क्यों दिया गया है?

उत्तर: यह समझाने के लिए कि जैसे झंडी के रंगों का अपना कोई महत्व नहीं, पर उनके संकेत से रेल व्यवस्था चलती है, उसी प्रकार पूजा के प्रतीक भी संकेत हैं जिनका पालन करके जीवन को व्यवस्थित बनाना है।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: लेखक यह क्यों कहते हैं कि ईश्वर पर प्रशंसा या निंदा का कोई असर नहीं पड़ता? इसके लिए उन्होंने कौन-कौन से तर्क दिए हैं?

उत्तर: लेखक ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि ईश्वर एक सुनिश्चित व्यवस्था और अनुशासन पर चलता है, भावनाओं या मनुहार पर नहीं। इसके लिए उन्होंने दो तर्क दिए हैं:

- **पुजारी और नास्तिक:** पुजारी नित्य प्रशंसा करते हैं और नास्तिक गालियाँ देते हैं, पर ईश्वर पर किसी का असर नहीं होता।

- **चयन आयोग:** जैसे चयन आयोग गिड़गिड़ाने पर किसी को नियुक्त नहीं करता, बल्कि योग्यता (नम्बर लाना) देखता है, वैसे ही ईश्वर भी पात्रता और कर्म देखता है।

2. प्रश्न: "कर्मकाण्ड लकीर भर पीटने की तरह" कब बन जाते हैं? पूजा को "बाल-क्रीड़ा" मानने से बचने के लिए क्या आवश्यक है?

उत्तर: कर्मकांड "लकीर पीटने" की तरह तब बन जाते हैं, जब उन्हें बिना भाव और उद्देश्य समझे केवल एक

यांत्रिक क्रिया की तरह किया जाता है और साथ ही परमात्मा के आदेशों (उत्कृष्टता के मार्ग पर चलना) की अवज्ञा की जाती है। पूजा को "बाल-क्रीड़ा" बनने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसके प्रतीकों के पीछे छिपे संकेतों को समझें और उन्हें अपने जीवन की रीति-नीति में निर्धारित करें।

3. प्रश्न: पूजा में देवियों की प्रतिमा मातृसत्ता का प्रतीक कैसे है और इससे साधक को क्या सीखना चाहिए?

उत्तर: देवियों की प्रतिमा तरुणी और सौन्दर्यमयी होते हुए भी उन्हें पवित्र दृष्टि से देखा जाता है और श्रद्धापूर्वक नमन किया जाता है। यह मातृसत्ता का प्रतीक है। इससे प्रत्येक साधक को यह सीखना चाहिए कि उसकी मान्यताएँ नारी मात्र के प्रति इसी स्तर की पवित्र और सम्मानजनक होनी चाहिए।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: अध्याय के अनुसार, क्या पूजा-उपासना से मनचाही कामनाएँ पूरी की जा सकती हैं? "फसल काटने" का उदाहरण देकर लेखक क्या स्पष्ट करना चाहते हैं?

उत्तर: नहीं, केवल पूजा-उपासना से मनचाही कामनाएँ पूरी नहीं हो सकतीं। लेखक स्पष्ट करते हैं कि उपासना में भगवान को रिझाने-फुसलाने जैसा कुछ भी नहीं है। "फसल काटने" का उदाहरण देकर वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि परिणाम के लिए पुरुषार्थ अनिवार्य है। जैसे फसल के लिए बीज बोना और सिंचाई करना आवश्यक है, उसी प्रकार ईश्वरीय कृपा या सफलता पाने के लिए पात्रता विकसित करना और उत्कृष्टता के मार्ग पर चलना (पुरुषार्थ) अनिवार्य है। केवल अनुनय-विनय से कुछ नहीं मिलता।

2. प्रश्न: "देवता की प्रतिमा एक पूर्ण मनुष्य की परिकल्पना है।" इस कथन का विश्लेषण करें। यह उपासक के जीवन को कैसे दिशा देती है?

उत्तर: इस कथन का अर्थ है कि देवता की प्रतिमा सिर्फ एक मूर्ति नहीं, बल्कि मानवीय उत्कृष्टता के सर्वोच्च आदर्श का प्रतीक है। यह एक ऐसे मनुष्य की कल्पना है जो हर दृष्टि से पूर्ण, सुन्दर और युवा जैसी ऊर्जावान मनःस्थिति से युक्त है। यह परिकल्पना उपासक के जीवन को दिशा देती है कि उसे भी अपने व्यक्तित्व को उसी तरह सर्वांग सुन्दर, परिष्कृत और ऊर्जावान बनाने का लक्ष्य रखना चाहिए। पूजा का उद्देश्य देवता से कुछ माँगना नहीं, बल्कि देवता जैसा बनना है।

अध्याय 10: उपासना-ध्यान-धारणा का स्वरूप और मर्म

सरल स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: नाम-जप का मूल उद्देश्य क्या है?

उत्तर: नाम-जप का उद्देश्य भूले हुए परमेश्वर और उसके विधान को बार-बार याद करना है, ताकि जीवन के लक्ष्य का विस्मरण न हो।

2. प्रश्न: सूर्य-ध्यान की दो प्रमुख प्रेरणाएँ क्या हैं?

उत्तर: सूर्य-ध्यान की दो प्रेरणाएँ हैं—ऊर्जावान (प्रगतिशील, पुरुषार्थी) बनना और आभा (ज्ञान का प्रकाश फैलाना)।

3. प्रश्न: प्राणायाम के अभ्यास के पीछे क्या भावना की जाती है?

उत्तर: इसके पीछे ब्रह्मांडव्यापी प्राण-तत्त्व (दिव्यता) को खींचने, धारण करने और अपने भीतर के अशुभ को बाहर फेंकने की भावना की जाती है।

4. प्रश्न: सच्चे अर्थों में तपस्वी किन्हें कहते हैं?

उत्तर: जो ओजस्वी, तेजस्वी और मनस्वी बनने के त्रिविध लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं, उन्हें ही सच्चे अर्थों में तपस्वी कहते हैं।

5. प्रश्न: रात्रि को सोते समय किस प्रकार की समीक्षा करनी चाहिए?

उत्तर: रात्रि को सोते समय उस दिन के क्रियाकलापों की कठोर समीक्षा करनी चाहिए, ताकि गलतियों का अगले दिन प्रायश्चित्त किया जा सके और अधिक सतर्कता बरती जा सके।

6. प्रश्न: लेखक के अनुसार, आज के समय का युग-धर्म क्या है?

उत्तर: आज का युग-धर्म है—जनमानस में दूरदर्शी विवेकशीलता को उभारना तथा चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार में उत्कृष्टता का संवर्धन करना।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: ध्यान में "तद्रूप बनने" का क्या अर्थ है? राम, कृष्ण और शिव का ध्यान करने का वास्तविक प्रयोजन क्या है?

उत्तर: "तद्रूप बनने" का अर्थ है, जिसका ध्यान किया जा रहा है, उसके गुणों को अपने भीतर आत्मसात करना और वैसा ही बनने का प्रयत्न करना। राम, कृष्ण और शिव का ध्यान करने का वास्तविक प्रयोजन केवल उनकी छवि को मन में लाना नहीं, बल्कि उनके जैसी महानता (मर्यादा, कर्मयोग, त्याग) के स्तर को अपने जीवन में उतारना है।

2. प्रश्न: लेखक ने चतुर्विध संयम (इंद्रिय, समय, अर्थ, विचार) को तपस्वी बनने से कैसे जोड़ा है?

उत्तर: लेखक के अनुसार, गुरुवार का उपवास और ब्रह्मचर्य केवल एक दिन की क्रिया नहीं है, बल्कि यह संयम साधना की शुरुआत है। जब यह साधना इंद्रिय, समय, अर्थ और विचार संयम के रूप में जीवन में फैलती है, तो यह व्यक्ति को सच्चे अर्थों में तपस्वी बनने की स्थिति तक ले जाती है, क्योंकि संयम से ही ओज, तेज और वर्चस्व की प्राप्ति होती है।

3. प्रश्न: "प्रातःकाल आँख खुलते ही नया जन्म होने जैसी भावना की जाये।" इस अभ्यास का व्यक्ति की दिनचर्या पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

उत्तर: इस अभ्यास से व्यक्ति प्रत्येक दिन को एक संपूर्ण जीवन के रूप में देखेगा। इससे वह अपने दिन की शुरुआत एक नई ऊर्जा और स्पष्ट लक्ष्य के साथ करेगा। वह अपने समय, श्रम और चिंतन का सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए एक रूपरेखा बनाएगा और भटकाव एवं प्रमाद से बचेगा। यह उसे हर दिन को सार्थक और उत्कृष्टता से जीने के लिए प्रेरित करेगा।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: "जप, ध्यान और प्राणायाम का प्राण-प्रवाह तभी वरदान बन कर अवतरित होता है, जब इन तीनों के पीछे अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई प्रेरणाओं को अपनाया जाये।" इन तीनों क्रियाओं के पीछे जुड़ी हुई गहन प्रेरणाएँ क्या हैं?

उत्तर: इन तीनों क्रियाओं के पीछे जुड़ी गहन प्रेरणाएँ हैं:

- **जप:** केवल नाम रटना नहीं, बल्कि निरंतर आत्म-स्मरण करना कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या है और ईश्वर की आकांक्षा क्या है। जैसे साबुन मैल साफ करता है, वैसे ही जप व्यक्तित्व को निर्मल करे।

- **ध्यान:** केवल छवि देखना नहीं, बल्कि ध्येय के गुणों को अपने चरित्र में ढालना। सूर्य का ध्यान मतलब जीवन में ऊर्जा और प्रकाश को आत्मसात करना, जिससे ओजस्, तेजस् और वर्चस् की वर्षा हो।

- **प्राणायाम:** केवल श्वास लेना-छोड़ना नहीं, बल्कि श्रेष्ठता का वरण करना। संसार की भली-बुरी चीजों में से केवल दिव्यता को ग्रहण करने और अशुभ को त्यागने का संकल्प। जब इन प्रेरणाओं को जीवन में उतारा जाता है, तभी ये क्रियाएँ सार्थक होकर वरदान बनती हैं।

2. प्रश्न: लेखक ने दान, पुण्य, तीर्थयात्रा जैसे पारंपरिक धर्म कार्यों का समन्वय "विवेक-विस्तार" की एक ही प्रक्रिया में कैसे किया है?

उत्तर: लेखक के अनुसार, समय की पुकार या युग-धर्म को समझना ही सबसे बड़ा परमार्थ है। आज की सबसे बड़ी समस्या भ्रष्ट चिंतन और दुष्ट आचरण है, जिसका समाधान केवल विवेक के विस्तार से ही संभव है। इसलिए, आज के संदर्भ में ज्ञान-यज्ञ या विचार-क्रांति ही सबसे बड़ा दान, पुण्य और तीर्थयात्रा है। अपने संसाधनों को लोकमानस के परिष्कार में लगाना ही ईश्वर की सच्ची सेवा है। यह महाकाल का आह्वान भी है, जिसे मानना साधक का परम कर्तव्य है।

अध्याय 11: प्रस्तुत अनुपम सुयोग का लाभ उठाएँ

सरल स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: लेखक ने पाठकों को शांतिकुंज आने का सुझाव क्यों दिया है?

उत्तर: लेखक ने इसे "बैटरी चार्ज करने" जैसा बताया है, ताकि आत्मपरिष्कार के लिए बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप नया प्रकाश और मार्गदर्शन मिलता रहे।

2. प्रश्न: "चल ज्ञान मन्दिर" या "ज्ञानरथ" क्या है?

उत्तर: यह चार पहियों वाली एक धकेल गाड़ी है, जिसमें टेपरिकॉर्डर, लाउडस्पीकर और प्रेरणादायक साहित्य होता है, ताकि कहीं भी जाकर नव-जागरण का संदेश फैलाया जा सके।

3. प्रश्न: "ज्ञानरथ" बनाने में लगभग कितनी लागत आती है?

उत्तर: इसमें लगभग एक तोले सोने के मूल्य जितनी लागत आती है।

4. प्रश्न: हनुमान, अर्जुन और शिवाजी जैसे महापुरुषों ने क्या किया था?

उत्तर: उन्होंने अपनी मनमर्जी की पूजा छोड़कर दिव्य चेतना या महाकाल के आह्वान को सुना और युग की आवश्यकता के अनुरूप कार्य किया।

5. प्रश्न: लेखक ने पाठकों से कौन-सी गुणन प्रक्रिया अपनाने का आग्रह किया है?

उत्तर: उन्होंने "एक से पाँच, पाँच से पच्चीस" वाली गुणन प्रक्रिया अपनाने का आग्रह किया है, ताकि वे अपने जैसे और विचारशील साथी तैयार कर सकें।

कठिन स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: "चल ज्ञान मन्दिर" को देवालय या प्याऊ जैसे पारंपरिक परमार्थ कार्यों से बेहतर क्यों बताया गया है?

उत्तर: इसे बेहतर इसलिए बताया गया है क्योंकि यह समय की आवश्यकता को पूरा करता है। पारंपरिक परमार्थ अपनी जगह उपयोगी हो सकते हैं, लेकिन आज की मूल समस्या मानसिक भटकाव और अविवेक है। "चल ज्ञान मन्दिर" सीधे इसी समस्या पर प्रहार करता है और ज्ञान एवं विवेक का विस्तार कर समाज की जड़ को सींचता है। यह एक दूरदर्शिता से भरा परमार्थ है जिसका सत्परिणाम हाथों-हाथ मिलता है।

2. प्रश्न: भगवान का रथ खींचने और "ज्ञानरथ" को घुमाने में क्या समानता बताई गई है?

उत्तर: दोनों में समानता यह है कि दोनों ही कार्य पुण्य लाभ की भावना से किए जाते हैं। जैसे भक्तगण भगवान का रथ खींचकर स्वयं को पुण्य का अधिकारी मानते हैं, उसी प्रकार आज की परिस्थितियों में "ज्ञानरथ" को घुमाकर युग-धर्म का संदेश फैलाना भी उतना ही पुण्यदायक कार्य है।

3. प्रश्न: लेखक यह क्यों कहते हैं कि "मनचाहे वरदान की विडम्बना पर अंकुश ही लगाये रखें"?

उत्तर: लेखक ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि सच्ची साधना व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि ईश्वरीय योजना में भागीदार बनने के लिए होती है। जब व्यक्ति अपनी छोटी-छोटी कामनाओं को छोड़कर महाकाल की महती योजना में जुट जाता है, तो उसके इष्टदेव स्वयं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर उसे सफल बनाते हैं, जैसा हनुमान और अर्जुन के साथ हुआ।

कठिनतम स्तर के प्रश्न

1. प्रश्न: "युग का मत्स्यावतार इन्हीं दिनों अपने कलेवर को विश्वव्यापी बनाने के लिए आकुल-व्याकुल है।" इस रूपक का क्या अर्थ है और इसमें व्यक्ति की क्या भूमिका हो सकती है?

उत्तर: यह एक गहरा रूपक है। "मत्स्यावतार" प्रलय के समय संरक्षण और नवनिर्माण का प्रतीक है। "युग का मत्स्यावतार" का अर्थ है कि एक नई विचारधारा या युग-चेतना जो वर्तमान वैचारिक प्रलय (भ्रष्ट चिंतन) से मानवता को बचाने और एक नए युग का निर्माण करने के लिए प्रकट हो रही है। वह अपने कलेवर को "विश्वव्यापी" बनाने के लिए आकुल है, अर्थात् यह विचारधारा कुछ लोगों तक सीमित न रहकर पूरे विश्व में फैलना चाहती है। इसमें व्यक्ति की भूमिका यह है कि वह इस नव-निर्माण की योजना में भागीदार बने और विवेक-विस्तार के माध्यम से इस चेतना को विश्वव्यापी बनाने में सहयोग करे।

2. प्रश्न: इस अध्याय के अंत में आत्मपरिष्कार और सत्प्रवृत्ति संवर्धन को "एक से पाँच की रीति-नीति" से कैसे जोड़ा गया है? यह प्रक्रिया व्यक्ति और समाज दोनों के विकास को कैसे सुनिश्चित करती है?

उत्तर: लेखक के अनुसार, सच्चा आत्मपरिष्कार केवल अपनी उन्नति तक सीमित नहीं है, बल्कि उसका विस्तार समाज तक होना चाहिए। "एक से पाँच की रीति-नीति" इसी विस्तार का व्यावहारिक सूत्र है। जब एक सुधरा हुआ व्यक्ति अपने जैसे चार और लोगों को सुधारने का संकल्प लेता है, तो यह प्रक्रिया एक श्रृंखला बन जाती है।

◦ **व्यक्तिगत विकास:** दूसरों को सिखाने और प्रेरित करने की प्रक्रिया में व्यक्ति का अपना ज्ञान और चरित्र और भी अधिक परिष्कृत और दृढ़ होता है।

◦ **सामाजिक विकास:** यह गुणन प्रक्रिया तेजी से समाज में सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन करती है, जिससे एक स्वस्थ और विवेकशील समाज का निर्माण होता है। इस प्रकार, यह प्रक्रिया व्यक्ति के आत्म-विकास को समाज के विकास के साथ जोड़कर दोनों को एक साथ सुनिश्चित करती है।

शब्दों का संकलन

- **प्रकृति का प्रपंच** - यह वह भूल-भुलैया का भटकाव है, जिसमें आम आदमी बेतरह उलझा, उद्विग्न और विपन्न होता देखा जाता है। इसे तत्त्वदर्शी प्रायः मायाजाल कहते हैं और इससे बचने की चेतावनी देते हैं।
- **मनुष्य जीवन का प्रयोजन** - स्वयं को सुसंस्कृत करना और दूसरों को समुन्नत करना।
- **"मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है"** - इस युक्ति का अर्थ है कि मनुष्य अपनी संकल्प भरी साहसिकता के आगे किसी भी अवरोध को टिकने नहीं देता। वह अपने हाथों गिरने के लिए खाई खोद सकता है और चाहे तो उठने के लिए मीनार भी चुन सकता है।
- **परिष्कृत जीवात्मा** - वेदान्त के चार सूत्र "तत्त्वमसि", "अयमात्मा ब्रह्म", "प्रज्ञानं ब्रह्म", "सोऽहम्" के अनुसार परिष्कृत जीवात्मा ही परब्रह्म है।
- **मनःस्थिति** - मनःशास्त्र के विज्ञानियों के अनुसार, मनःस्थिति ही परिस्थितियों की जन्मदात्री है।
- **संसार (अध्यात्म की दृष्टि से)** - यह संसार गुम्बज की तरह है, जो अपने ही उच्चारण (कर्मों और विचारों) को प्रतिध्वनित करता है।
- **मानव जीवन का परम पुरुषार्थ** - अपनी निकृष्ट मानसिकता से त्राण पाना तथा भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण वाले स्वभाव-अभ्यास से इनकार करना।
- **ओजस्** - समर्थता को ओजस् कहते हैं।
- **तेजस्** - मनस्विता को तेजस् कहते हैं।
- **वर्चस्** - जीवट को वर्चस् कहते हैं।
- **शिष्टता** - यह सभ्यता की आधारशिला है। दूसरों के प्रति सम्मान और अहंकार रहित विनम्र, मधुर और सज्जनोचित व्यवहार ही शिष्टता है।
- **सुव्यवस्था** - अपने समय, श्रम, मनोयोग, जीवनक्रम, शरीर, सामर्थ्य आदि सभी सम्बद्ध उत्पादनों का सुनियोजन करना, ताकि उनको अस्त-व्यस्तता से बचाया जा सके और उनका अधिकाधिक लाभ उठाया जा सके।
- **सहकारिता** - मिल-जुलकर काम करना और आदान-प्रदान का उपक्रम बनाये रखना।
- **समझदारी** - तात्कालिक आकर्षण पर संयम बरतना और दूरगामी, चिरस्थायी परिणामों को समझकर निर्णय करना।
- **जिम्मेदारी** - शरीर रक्षा, परिवार व्यवस्था, समाज निष्ठा, अनुशासन का परिपालन जैसे कर्तव्यों से बँधा होना।

- **बहादुरी** - हिम्मत भरी साहसिकता, निर्भीक पुरुषार्थ-परायणता; जोखिम उठाते हुए भी नीति-निष्ठा के मार्ग पर चलना।
- **धर्म** - धर्म उसे कहते हैं, जो धारण किया जाये, अर्थात् जिसे व्यवहार में उतारा जाये।
- **द्विजत्व (दूसरा जन्म)** - पशु को देवता बना देने वाली महान उपलब्धि, जिसमें व्यक्ति की आकृति नहीं, बल्कि प्रकृति बदल जाती है।
- **ईश्वर की एकमात्र पूजा** - अपने आप को परिष्कृत एवं सुव्यवस्थित बनाना ही ईश्वर की एकमात्र पूजा, उपासना और अभ्यर्थना है।
- **देवपूजा के कर्मकाण्ड** - इन्हें प्रतीकोपासना कहते हैं, जिसका तात्पर्य है कि संकेतों के आधार पर अपने क्रिया-कलापों को निर्धारित करना।
- **देवता की प्रतिमा** - यह एक पूर्ण मनुष्य की परिकल्पना है, जिसके उपासक को भी हर स्थिति में सर्वांग सुन्दर एवं नवयुवकों जैसी मनःस्थिति में बने रहना चाहिए।
- **देवियाँ (प्रतिमा रूप में)** - ये मातृसत्ता की प्रतीक हैं, जो नारी मात्र के प्रति पवित्र और सम्मानजनक मान्यता विकसित करने का संकेत देती हैं।
- **जल (पूजा में)** - इसका अर्थ है—शीतलता; अर्थात् हमें शांत, सौम्य और संतुलित रहना चाहिए।
- **अक्षत (पूजा में)** - इसका अर्थ है—अपने उपार्जन का एक अंश दिव्य प्रयोजनों के लिए नियोजित करने में अटूट निष्ठा बनाए रखना।
- **पुष्प (पूजा में)** - इसका अर्थ है—हँसते-हँसाते, खिलते-खिलाते रहने की प्रकृति अपनाना।
- **चंदन (पूजा में)** - इसका अर्थ है—समीपवर्तियों को अपने जैसा सुगन्धित बना लेना और विकट परिस्थितियों में भी अपना स्वभाव न छोड़ना।
- **धूप (पूजा में)** - इसका निर्देशन है कि हम वातावरण को सत्प्रवृत्तियों से भरा-पूरा और सुगन्धित बनाएँ।
- **दीपक (पूजा में)** - इसका संकेत है कि ज्ञान का प्रकाश व्यापक बनाने के लिए हम अपने साधनों का उत्सर्ग करने को तैयार रहें।
- **नाम जप** - इसका तात्पर्य है—जिस परमेश्वर और उसके विधान को हम भूले रहते हैं, उसको बार-बार स्मृति पटल पर अंकित करना।
- **गायत्री** - इसका अर्थ है—सामूहिक विवेकशीलता।
- **सूर्य ध्यान का प्रयोजन** - ऊर्जावान (प्रगतिशील, पुरुषार्थी) बनना और आभा (ज्ञान का प्रकाश फैलाना)।
- **तपस्वी (सच्चे अर्थों में)** - ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी बनने के त्रिविध लक्ष्य प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करने वालों को ही सच्चे अर्थों में तपस्वी कहते हैं।

- **युग-धर्म (अपने समय का)** - जनमानस में दूरदर्शी विवेकशीलता को उभारना तथा चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में उत्कृष्टता का संवर्धन करना।
- **ज्ञानरथ (चल ज्ञान मंदिर)** - साइकिल या ठोस रबड़ के चार पहियों पर मंदिर जैसी आकृति की एक धकेल गाड़ी, जिसमें टेपरिकॉर्डर, लाउडस्पीकर और प्रेरणादायक साहित्य होता है, ताकि कहीं भी जाकर नव-जागरण का संदेश फैलाया जा सके।